International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

भारतीय दर्शन में वर्णित आचरण स्वरुप

जोगेन्द्र
सुपुत्र श्री जगबीर सिहं
गांव बालंद, रोहतक।

विषय – संस्कृत

भूमिका–

न्याय दर्शन में शुभ और अशुभ दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ बतलायी हैं। जिस समय शुभ प्रवृत्ति होती है, उस समय मनुष्यों शुभ अथवा पुण्य कर्म करता है। अशुभ कार्यों से ही दुःख प्राप्त होता है; जब व्यक्ति अशुभं करता है तब वह मिथ्याज्ञान अर्थात् अविद्याग्रस्त होता है। जिस समय अविद्याग्रस्त होकर कर्म करता है तो उसकी प्रवृत्ति अशुभ होती है। अशुभ प्रवृत्ति से युक्त होकर जब कर्म करता है तो जो पदार्थ अनित्य है, उनको नित्य मानता है। उसी प्रकार अनित्य (विनाश) धनांदिकों को नित्य (अविनाशी) है, ऐसा समझना, औरत, पुत्र, घर इत्यादि जो वस्तुतः रक्षा नहीं कर सकते उन्हें अपना रक्षक जानना, विनाशादि होने के कारण भय युक्त धन–संपत्ति आदिकों को भयरहित मानना तथा अस्थि, मांस, मूत्र, पुरीष (विष्ठा) इत्यादिकों से व्याप्त होने के कारण जुगुप्सित अपने तथा दूसरे के शरीर को अच्छा जानना, एवं अनेक प्रकार के दुःखों का कारण होने से हातव्य संसार को अप्रतिहातव्य समझना (इस प्रकार आत्मा से लेकर मन नामक, प्रमेय पदार्थों में मिथ्याज्ञान होता है।) पुण्य तथा पाप कर्मों की प्रवृत्ति में पुण्य–पापरूप कर्म ही नहीं हैं, तथा उक्त कर्मफलों (सुख–दुःखों) को नहीं देना, अर्थात् स्वर्ग–नरक आदि फलों को उत्पन्न करने वाला कोई कर्म नामक पंदार्थ नहीं है।

इस प्रकार प्रवृत्ति में मिथ्याज्ञान दिखाकर दोष नामक प्रमेय पदार्थ में यह सम्पूर्ण संसार दोष निमित्त से नहीं होता, यह मिथ्याज्ञान है। प्रेत्यभाव नामक प्रमेय पदार्थ में अर्थात् मरणोत्तर जन्म होने में, जन्म लेने वाला कोई जीव, सत्त्व ज्ञान का आश्रय आत्मा नामक प्रमेय पदार्थ नहीं हैं। जो मरण को प्राप्त होकर फिर जन्म का ग्रहण करे, अर्थात् अपूर्व शरीर तथा इन्द्रियादिकों को प्राप्त करे तथा उपरोक्त जन्म बिना निमित्त ही होता है, एवं उक्त जन्म के

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

उच्छेद में तत्त्वज्ञान कारण नहीं है। एवं उपरोक्त जन्म मरणरूप प्रेत्यभाव अनादि नहीं है और उसका मोक्ष अवधि न हो सकने से अनन्त है, तथा स्वभाव आदि रूप निमित्त से प्रेत्यभाव होता है न कि पुण्य–पापरूप कर्मों से होता है, एवं शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, वेदना आदिकों के समुदाय के उच्छेद नाश मात्र से मरण एवं अपूर्व शरीरादिकों के सम्बन्ध से होता हुआ भी प्रेत्यभाव वस्तु स्वरूप, आत्मा से रहित है, ऐसा भी प्रेत्यभाव में मिथ्याज्ञान होता है। ऐसे ही अपवर्गरूप प्रमेय पदार्थ में भी यह संपूर्ण संसार के कार्यों से उपत्य (निवृत्त होना) स्वरूप अपवर्ग (मोक्ष) महाभयंकर है, क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थों का विप्रयोग (विरह) होने से सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याणकारक विषयों का लोप (नाश) हो जाएगा। अतः ऐसा कौन बुद्धिमान् प्राणी है जो सम्पूर्ण सुखों के नष्ट करने वाले इस जडरूप अपवर्ग (मोक्ष) को चाहेगा। ऐसा मिथ्याज्ञान है।

वात्स्यायन ने भाष्य में स्पष्टीकरण देते हुए कहा है कि समय न्यायादि दर्शनशास्त्रों से उत्पन्न हुए तत्वज्ञान से विरोध होने के कारण पूर्वोक्त मिथ्याज्ञान का अपाय होता है, उस समय मिथ्याज्ञान रूप मूल कारण के उपाय (निवृत्ति) से राग, द्वेष, मोहादिरूप कार्य निवृत्त होते हैं. और उन दोषरूप कारणों के निवृत्त होने के कारण, उनकी पूर्वोक्त पुण्य–पापरूप दस प्रकार की शुभ तथा अशुभ प्रवृत्ति निवृत्त हो जाती है और उस प्रवृत्तिरूप कारण के निवृत्त होने से उसका कार्य पुनर्जन्म प्राणी को नहीं होता उस जन्म रूप कारण के निवृत्त होने से दुःखरूप कार्य की निवृत्ति होती है दुःखरूप कारण की अत्यन्त निवृत्ति होने से आत्यन्तिक संसार निवृत्ति रूप अपवर्ग होता है। जिसे प्रथम सूत्र में निश्रेयस ऐसा कहा गया है। अर्थात् पूर्व दुःखों के आश्रय आत्मा में आत्यन्तिक दुःख की हानि स्वरूप मोक्ष प्राप्ति होती है। वह उपरोक्त मिथ्याज्ञान का विरोधी तत्त्वज्ञान मिथ्याज्ञान के विपरीत ज्ञानरूप से इस प्रकार कहा गया है–जैसे आत्मारूप प्रमेय पदार्थ में शरीरादिकों से भिन्न आत्मा की सत्ता है, तथा अनात्मा, शरीर, इन्द्रिय आदिकों में वे अनात्मा हैं यह ज्ञान तत्त्वज्ञान है। इसी प्रकार दुःख को दुःख, अनित्य घटादि पदार्थों को अनित्य तथा वास्तविक रक्षा न कर सकने वाले स्त्री–पुत्र आदिकों को ये अरक्षक नहीं हैं, ऐसा जानना एवं भययुक्त धन–सम्पत्ति आदि को भयरहित मानना, अस्थिमांसादियुक्त होने से निन्दित शरीरादिकों को निन्दित समझना, तथा त्याग करने योग्य जन्मादि रूप संसार को त्याग योग्य समझना।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

अशुभ प्रवृत्ति से युक्त व्यक्ति अशुभ एवं पाप कर्म करता है, इन पाप कर्मों का वर्णन करते हुए कहा है कि वह शरीर से दूसरे की हिंसा, अस्तेय, (चोरी), प्रतिसिद्ध (निषिद्ध) परस्त्री से मैथुन (भोग) ऐसे तीन प्रकार के दुष्कर्म करता है, तथा वाणी से अमृत (मिथ्या बोलना), परुष सूचन (कठोर वचन बोलना) तथा असम्बद्ध, ऐसे तीन, एवं मन से दूसरे को द्रोह, अन्याय से दूसरे के धन की प्राप्ति की इच्छा एवं नास्तिकता, ऐसे तीन दुष्कर्म करता है। वह यह पाप कर्मरूप तीन प्रकार की प्रवृत्ति अधर्म को उत्पन्न करती है, तथा शरीर से दान करना, रक्षा करना और सेवा शुश्रुषा करना ऐसी तीन प्रकार की एवं वाणी से सत्य बोलना, हित (उपकार) कारक वचन, प्रियवचन तथा सांगवेदाध्ययन करना ऐसी चार प्रकार की, इसी प्रकार मन में दया करना अस्पृहा (लोभ न करना) तथा शास्त्र एवं गुरुवचन में श्रद्धा रखना, ऐसे तीन प्रकार की जो प्रवृत्ति होती है, उससे धर्म. उत्पन्न होता है।

भारतीय दर्शनों में यह स्पष्ट किया है कि प्राणी के लिए सबसे अधिक अशुभ दुःख है। दुःख से छूटने का प्रयास करना ही प्राणी के जीवन का उद्देश्य है। दुःख संसार में प्राणीमात्र को बुरा लगने वाला प्रमेय है। संसार में दुःख को प्राप्त करने के लिए कोई इच्छा नहीं करता है, इस दुःख से बान्धना अर्थात् पीड़ा उसके अनुषंग्ड़ी अर्थात् सम्बन्धी शरीरादि जिससे दुःखी होते रहते हैं, वह दुःख कहलाता है। भारतीय दर्शनों में सबसे बड़ा दुःख संसार में पुन–पुनः जन्म लेना ही है। इस दुःख के छूटकारे के लिए मुक्ति की अवधारणा की जाती है। मुक्ति का लक्षण करते हुए कहा है कि इस दुःख से अत्यन्त मोक्ष अर्थात् छुटकारे को नाम अपवर्ग है।

भाष्यकार ने कहा है कि ग्रहण किए जन्म की हानि होकर पुन दूसरे जन्म का ग्रहण नहीं किया जाता, इस कारण इसे सम्पूर्ण ऐकान्तिक तथा आत्यान्तिक दुःखों की निवृत्ति स्वरूप ही अवस्था को जो नाश न होने के कारण अपर्यन्त कहाती है, मोक्ष को जानने वाले विद्वान् उसे अपवर्ग (मोक्ष) अमृत्युपदं (मरणरहित स्थान) ब्रह्म (व्यापक), क्षेमप्राप्तिः अर्थात् वास्तव में कल्याण रूप मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं।

अज्ञानी मनुष्य संसार के विषयों को यह समझता है कि यह मेरे सुख के साधन हैं जब उसको यह तत्त्वज्ञान होता है कि ये संसार के विषय दुःख के साधन हैं। उस समय वह इन विषयों को त्यागना प्रारम्भ कर देता है। आत्मा की सिद्धि करते हुए न्यायदर्शन में स्पष्ट

किया है कि बुद्धि में विशेष दुःखों की भोग की इच्छा ही आत्मा के दुःखों का कारण बनती है। जब बुद्धि में ज्ञान का उदय होता है तो उस समय विषयों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। जब तक हम कर्म करते रहते हैं तब तक हम पर राग और द्वेष को शासन रहता है व्यक्ति परमश्रेय को नहीं प्राप्त कर सकता है, दुःख के प्रति घृणा ही घृणा है, सुख के प्रति राग ही राग है। इसलिए जब तक ये राग और द्वेष रहेंगे तब तक परमश्रेय हमारी पहुँच से दूर रहेगा।

न्याय दर्शन ने यह स्पष्ट किया है कि जब कोई व्यक्ति दोषों पर विजय प्राप्त कर लेता है उस समय पुनर्जन्म का कारण समाप्त हो जाता है। वात्स्यायन ने अपने भाष्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए कहा है कि विद्वान लोग कर्मों का अनुष्ठान करके मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

अपवर्ग की प्राप्ति के लिए प्रारम्भिक अवस्था में नाना प्रकार के शुभ कर्मों को करना चाहिए। इसका विस्तृत वर्णन करते हुए न्याय भाष्य में स्पष्ट किया है कि तीन प्रकार के धर्म स्कन्ध हैं। जिनमें यज्ञ करना, स्वाध्याय करना और दान देना, प्रथम धर्म स्कन्ध है। द्वितीय धर्म स्कन्ध है, ब्रह्मचर्य से रहता हुआ, गुरु के आश्रम में वास करने वाला, ऐसा, तीसरा धर्म स्कन्ध है। अत्यन्त, अपनी आत्मा को गुरु के कुल सेवा में कष्ट देता हुआ सम्पूर्ण ही ये धर्म स्कन्ध पुण्यलोक के देने वाले होते हैं। परमात्मा में स्थित अमरता मोक्ष को प्राप्त करता है। इसी को ज्ञानी संन्यासी पुण्य लोक को प्राप्त करने की इच्छा करते हुए गमन करते हैं, संन्यास लेते हैं। निश्चय से कहते हैं कि काममयः एवं अर्थात् कामनामय ही है; यह पुरुष इस कारण वह आत्मा जैसे—कामना रखने वाला, होता है। जैसे संकल्प वाला होता है, उसी कर्म के अनुसार आगे या अगले जन्म को प्राप्त करता है।

भारतीय दर्शनों में यह सर्वमान्य मत है कि जो जिस प्रकार के कर्म करता है उसे कर्म का एक निश्चित फल प्राप्त होता है। न्याय भी इसी सिद्धान्त को स्वीकार करता है। इन कर्मों में कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जिनका फल तत्काल मिलता है। इस कर्म की व्याख्या करते हुए वात्स्यायन ने भाष्य में बतलाया है। कि जिस प्रकार वृक्ष में फल, फूल हों, ऐसी इच्छा करने वाला प्राणी वृक्ष में जल सिंचनादि क्रिया को करते हैं। जिस जल सिंचन के निवृत्त होने पर बीजरूप पार्थिव जलधातु से बटुरकर उस वृक्ष के मध्य में वर्तमान तेज से पककर उसमें

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

रसद्रव्य को उत्पन्न करता है और वृक्ष में सम्बन्ध रखने वाला द्रव्यरूप रस पाकावस्था को प्राप्त होकर दूसरे व्यूह (अवयव संस्थान) विशेष से उस वृक्ष में प्रविष्ट होता हुआ पत्ते, फल, फूल आदि फल (कार्य) को उत्पन्न (तैयार) करता है। इस प्रकार वह वृक्ष सिंचनादि क्रिया के नष्ट होने पर भी इन व्यापारों के कारण फलादिकों को देने से सार्थक होती हैं न कि नष्ट हुए जलसिंचन से पत्ते, फूल, फल आदि कार्य होते हैं। इसी प्रकार प्रवृति से कर्म तथा फल के मध्य में धर्म तथा अधर्म नामक अदृष्ट एक संस्कार उत्पन्न होता है। और दूसरे चरणों की सहायता से कालान्तर में स्वर्गादि फल को देता है।

न्याय के अनुसार सभी कर्मों का परिणाम अथवा प्रयोजन दुःखों का नाश और सुखों की प्राप्ति है। सुखों की प्राप्ति का अभिप्राय विषयों के सुख से नहीं है, अपितु दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति करने के साथ मिश्रित रूप में रहता है। इसलिए न्याय ने कहा है कि संसार दुःखमय है परन्तु अज्ञानवश हम उसे सुखमय मान लेते हैं। परमश्रेय की प्राप्ति संसार से छुटकारा पाने में है। इसलिए स्पष्ट किया है कि दुःख, जन्म, प्रवृत्ति दोष और मिथ्याज्ञान, इस श्रृंखला की एक–एक उत्तरवर्ती श्रृंखला अथवा कड़ी के नष्ट होने से उसकी पूर्ववर्ती श्रृंखला (कड़ी) नष्ट होती है। दुःख जन्म का परिणाम है, और जन्म प्रवृत्ति का परिणाम है। डॉ0 राधाकृष्णन् ने यह कहकर आलोचना की है कि "नैयायिक को लज्जा होती है कि उसका शरीर है और नावलिस के समान वह घोषणा करता है कि जीवन आत्मा का एक रोग है।" डॉ0 राधाकृष्णन् की यह आलोचना अनुचित है, क्योंकि न्याय ने यह स्पष्ट किया है कि यदि परमश्रेय अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करना है। तो मिथ्याज्ञान को दूर करना अपेक्षित है। तत्त्वज्ञान का प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य है। भारतीय दर्शनों की यह मूल भावना वैदिक साहित्य से निरन्तर समस्त भारतीय दर्शनों से समाहित है। इसलिए जिन कर्मों से अशुभ की और प्रवृत्ति जाने का भय रहता है, उनकी और अर्थात् उन कर्मों को न करने का विधान करना न्याय दर्शन का उद्देश्य प्रतीत होता है। इसलिए कहा है कि निष्ठुरता, घृणा, ईर्ष्या, दुर्भावना और क्रोध की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना आवश्यक है। इसी प्रकार लालच, तृष्णा, वासना, और स्पृहा आदि का भी परित्याग करना अपेक्षित है। न्याय दर्शन में सबसे बुरा मोह को माना है, क्योंकि मोह के कारण ही राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। इन उपर्युक्त दोषों के कारण ही आत्मा मिथ्याज्ञान के वशीभूत होकर संसार के दुःख सागर में अनादि

काल से जन्मता रहता है और मरता रहता है। इसलिए कहा है कि जब मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है तो दोष भी दूर हो जाते हैं। दोषों के दूर हो जाने के पआात् प्रवृत्ति का नाश हो जाता है। प्रवृत्ति के न रहने पर जन्म नहीं होता है, और जन्म के न होने पर दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। इसी को न्याय दर्शन में परमश्रेय अर्थात् मोक्ष कहा गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- यदा तु तत्त्वज्ञानान्मिथ्याज्ञानमपैति, तदा मिथ्याज्ञानापाये दोषा अपयन्ति, दोषापाये, प्रवृत्तिरपैति, प्रवृत्त्यपाये जन्माऽपैति, जन्मापाये दुःखमपैति, दुःखापाये च आत्यन्तिकोऽपवर्गो निश्रेयसमिति।।

  —वा0 भा0, पृ0 20

- अशुभ— हिसांस्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरतिवाचाऽनृतपुरुष सूचनाऽसम्बद्धानि, मनसापरद्रोह परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति। शुभं—शरीरेण दांन परित्राणं परिचरणं च, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धा चेति।

  —वा0 भा0, पृ0 21

- बाधनलक्षणं दुःखम्।। 21।।

  —न्या0 20 अ0 1 आ0 2 सू0 21

- तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।। 22।।

  —न्या0 द0 अ0 1 आ0 2 सू0 22

- तद्भयमजरममृत्यपदं ब्रह्म क्षेमप्राप्तिरिति।

  —वा0 भा0, पृ0 59

- न प्रवृत्ति प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य।। 64।।

  —न्या0 द0 अ0 4, अ0 2, सू0 64

- कर्मभिर्मुत्युमृषयो निषेदुः प्रजावन्तो द्रविणमिच्छमानाः।

  —वा0 भा0 पृ0 530

- अथापरे ऋषयो मनीषिणः परं कर्मभ्योऽमृतत्वमानशुः वही। पृ0 530

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

- यथा फलार्थिना वृक्षमूले ऐकादि परिकर्म क्रियते......न च विनष्टात्फलनिष्पत्तिः। तथा प्रवृत्त्या संस्कारों धर्माधर्मलक्षणो जन्यते।

   —वा0 भा0, पृ0 512

- तददृष्टकारितमिति चेत् पुनस्तत्प्रसयेऽपवर्गे।। 68।।

   —न्या0 द0, अ0 3, आ0 2, सू0 68